स्पर्श : जीवन से मुक्त होने की तरफ ले जाती उम्र की एक अवस्था

ज्योति प्रसाद*

शब्द के साथ जादू होता है। किसी भी शब्द के साथ एक छवि जुड़ी हुई है, इसके साथ ही आवाजें और तजुर्बों के गुच्छे भी शामिल हैं। यदि गांधीजी का नाम लिया जाए तो दिमाग में पहली छवि भारतीय नोटों पर बनी हुई उनकी तस्वीर सबके जेहन में पहले पहल उतर जाती है। हालाँकि इस बात पर बहस की जा सकती है कि नोटों के अलावा अन्य तस्वीरें उभर सकती हैं, लेकिन इस बात पर सब मिलजुलकर सहमत हो सकते हैं कि गांधीजी के नाम के साथ एक वृद्ध व्यक्ति का चेहरा जुड़ा हुआ है। इसी तरह दादी, नानी, दादा और नाना शब्दों को पुकारा जाए तो सभी मानसिक अथवा तय सोच से समझ जाएंगे कि इन व्यक्तियों की उम्र क्या होगी। हो सकता है दिमाग में सफेद बाल वाली छवियाँ उभर आएँ। उम्र एक सच्चाई है। वृद्धावस्था जीवन के अंतिम चरण का एक पड़ाव है। जीवन और मृत्यु के दर्शन में कुछ लोगों के मत के अनुसार यह अवस्था नए जीवन की तरफ ले जाती है। यह प्रक्रिया मृत्यु के माध्यम से होती है। कुछ लोगों के अनुसार वृद्धावस्था जीवन की दुखद अवस्था है। इसमें व्यक्ति दूसरों पर निर्भर हो जाता है और लगभग असहाय रहता है। इन सब आम खयालों में जो छूट जाता है, वह है किसी व्यक्ति की महत्ता, उसकी अनुभव पूँजी और मानवीय संबंधों की गरिमा।

उम्र

शैशव अवस्था से उम्र से बढ़ते हुए वृद्ध होना जीवन में एक सच्चाई है। उम्र को देखा जा सकता है। उसे छुआ जा सकता है। उदाहरण के लिए हमारे सफेद बाल, जिन्हें देखकर एक उम्र में अफसोस होता है। सिकुड़ती हुई त्वचा को छू कर यह एहसास होता है कि शरीर बदल रहा है। उसके भीतर और बाहर कुछ बदलाव धीरे-धीरे आ रहे हैं। व्यक्ति चाहे या न चाहे, ये बदलाव उसके शरीर में उसकी इजाजत के बगैर होने लगते हैं। जैसे हमारे बाल, सफेद होने की आज्ञा नहीं लेते। ठीक इसी तरह काम करते-करते हम जल्दी थकने लगते हैं। हमारा शरीर थकने की हमसे आज्ञा नहीं लेता। शरीर के बाकी अंगों के साथ भी यही होता है।

किसी भी व्यक्ति के जीवन को देखें तो उम्र के कुछ साफ बंटवारे दिख जाते हैं। ये उम्र के पड़ाव हैं। शिशु, बच्चा, नौजवान, वयस्क, परिपक्वता की ओर जाता व्यक्ति और फिर वृद्ध-अवस्था। घर परिवारों में हमने इन इंसानी उम्र के पड़ावों का एक फ्रेम भी बना दिया है। शिशु ऐसा जो नटखट हो। बच्चों के साथ उनका शरारती होना जुड़ा है। नौजवान होते बच्चे थोड़ी जिद्दी और गुस्से को पालने वाले माने जाने लगे हैं। वयस्क समझदारी से जीवन जीते हुए माने जाने लगे हैं। बूढ़े होने पर ऐसे व्यक्ति की छवि बनाई गई है, जो घर में सलाहकार है। कुछ महत्वपूर्ण मामलों में फैसले लेने वाला व्यक्ति है। विरासत में मिले हुए सामाजिक, धार्मिक और परम्परागत कायदों का पालन किया जा रहा है या नहीं, ये निगरानी भी घर के 'बड़े बुजुर्ग-व्यक्ति' पर ही अमूमन देखने को मिलती है।

पर महिलाओं के लिए वृद्धावस्था कुछ और ही परिभाषा लिए होती है। यह जेंडर की सिमेंटिंग ही है जो हमें अखरती नहीं है। उदाहरण के लिए बुजुर्ग औरतों की लोकप्रिय छवियों को जबरन आदर्श की चाशनी में डुबोया जाता है। मसलन, वह धार्मिक महिला होगी, गैर-पारिवारिक लोगों से संपर्क न करने वाली, फीके रंग के साधारण से कपड़े पहनने वाली, दुनिया की तमाम शोर-शराबे वाली चीजों से इतर उसके हाथ में एक तस्बीर होगी, वह कहानियाँ सुनाना जानती होगी, घर के किसी कोने में बैठने वाली, पुराने रीति-रिवाजों का पालन करवाने और करने वाली, अकेले रहने वाली, मासूम और ममता के इत्र में डूबी हुई तो कभी खड़ूस भी। यह भी संभव है कि पति की मृत्यु के बाद उसके जीवन का इकलौता साथी खुद उसका अकेलापन होगा। ये छवियाँ आमतौर पर परिवारों में ऐसे जमा दी गई हैं कि बुजुर्ग महिला को इनसे बाहर देखा ही नहीं जाता। इसके अलावा ये छवियाँ साहित्य और सिनेमा के चलते भी बेहद आम हैं।

यदि कोई स्त्री इस उपर्युक्त छवि से बाहर आधुनिक कपड़ों अथवा थोड़े बहुत शृंगार के साथ जीने की कोशिश करती है, तब उसे 'बूढ़ी घोड़ी लाल लगाम' जैसी अमानवीय कहावतों से ताना मारने वाले लोगों का सामना करना पड़ता है। इसी तरह बढ़ती उम्र के साथ

* सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एनसीडब्ल्यूईबी, मैत्रेयी महाविद्यालय (दिल्ली विश्वविद्यालय)।

मानसिक बदलावों के चलते व्यवहार में आने वाले परिवर्तनों को समझने वाले लोगों की भी कमी है। इसके लिए 'बूढ़ा सठिया गया है' जैसी अन्य कहावत है। इसके अलावा 'पाँव कब्र में है' जैसी कहावत भी इंसानी गरिमा को ठेस पहुँचाने वाली है। विडंबना यह है कि तथाकथित पढ़ा-लिखा आधुनिक समाज आज भी इन कहावतों का इस्तेमाल बिना झिझके और खटके करता हुआ दिखाई देता है।

उम्र का बढ़ना मानसिक और शारीरिक बदलाव की प्रक्रिया है। बात यहीं नहीं रुकती। इसके साथ-साथ हमारे निजी और बाह्य रिश्तों पर असर होता है। हमारे रहन-सहन में फर्क आने लगता है। पसंद बदलने लगती है। यहाँ तक कि हमारी पसंद पर कई लोग हमारी उम्र के मुताबिक अपनी पसंद और चुनावों को आरोपित करने लगते हैं। उदाहरण के लिए अमूमन घरों में वृद्ध व्यक्तियों के लिए कपड़ों के रंगों में भारी परिवर्तन होता है। फीके और बुझे हुए रंगों को उम्र से जोड़ दिया गया है। सामान्य भारतीय मोहल्लों में ऐसी बहुत-सी वृद्ध स्त्रियाँ दिख जाएँगी जो सफेद या फीके रंगों की साड़ी में रंगों से दूर जीवन जीती हैं। आमतौर पर शादी या जश्न के माहौल में भी हमारे दिमाग में बुजुर्ग छवियाँ रंगीन कपड़ों से दूर ही रहती हैं। दूसरी तरफ जीवन के आखिरी पड़ाव पर रंग एक अहम भूमिका निभाने वाले कारक होते हैं। रंग अपने साथ ढेरों विवरण लेकर चलते हैं। रंग व्यक्ति के अनुभवों और उन तजुर्बों से भी जुड़े होते हैं, जिनके साथ जीवन बीतता आता है। प्रकृति को गौर से देखने पर यह महसूस होता है कि वहाँ बर्फ से ढके पहाड़ भी एक चमक लिए होते हैं या फिर आसमान में सैर को निकलने वाले बादल दूध और रौशनी से नहाते हुए उजले हो उठते हैं। प्रकृति कभी फीके रंगों की सलाह जीवन के लिए नहीं देती। फिर हमारे बुजुर्गों पर ये फीके रंग क्यों थोपे जाते हैं?

शरीर और उम्र

हमारी उम्र शरीर के साथ घनिष्टता से ठीक उसी तरह जुड़ी है जिस प्रकार हमारा स्वास्थ्य हमारे आहार से जुड़ा है। हमें आहार लेना ही होगा अगर हमें जीवन की तमन्ना है। ठीक इसी तरह वक्त के बढ़ने से हमारा शरीर भी उम्र में पकना शरू हो जाता है। बुजुर्ग होना जीवन और उर्जा के तिलिस्म के अचानक खत्म होने की क्रिया नहीं है। यह प्राकृतिक प्रक्रिया है। जिस प्रकार कोई नया खरीदा हुआ उपकरण, हमेशा नया नहीं रहता, ठीक उसी तरह शरीर वक्त से परे हमेशा एक सा नहीं रह सकता। यही प्रकृति का नियम है, जो हर जीव और पदार्थ पर लागू होता है। इसे स्वीकार कर लेने से मानसिक जूझन कम हो जाती है। कुछ नियम अटल होते हैं। उनसे लड़ा नहीं जा सकता।

शरीर में समय के साथ होने वाले बदलाव सुखद नहीं होते हैं। उम्र अपनी एक निशानी छोड़ना चाहती है। सामान्य रूप से पीड़ा, चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक साथ चलने लगती है। उदासी और अकेलापन भी घेरने के कई जाल बिछा देते हैं। रोना या खुश होना इत्यादि भाव जल्दी-जल्दी बदलने लगते हैं। नम्रता भी आनी शुरू हो जाती है, फिर चाहे वह सिकुड़ती हुई त्वचा में हो या स्वाभाव में। मृत्यु का भय घेरने लगता है। मृत्यु जो न दिखती हुई भी हरदम साथ में बनी रहती है। जीवन के प्रत्येक क्षण में हमारे साथ पक्के साथी की तरह रहते हैं। मृत्यु अंत है। उससे पहले शिथिलता के साथ शरीर जुड़ना शुरू हो जाता है। बुजुर्ग होना हमारी सक्रियता का धीमा हो जाना भी होता है। इसका उदाहरण अक्सर बुजुर्गव्यक्तियों द्वारा की जाने वाली शिकायतों में देखा जा सकता है। वे कई बार कहते हुए सुनाई देते हैं कि अब ज्यादा चल नहीं पाते, घुटनों में दर्द होता है, जल्दी थक जाते हैं, आदि। आँखों की रोशनी का मद्धिम होना भी एक दुखद दिक्कत है। हालाँकि आज के समय में इलाज की सुविधा मौजूद है फिर भी कई बार यह एक बड़ी पीड़ा होती है और व्यक्ति की निर्भरता किसी दूसरे पर बढ़ जाती है।

पारिवारिक संबंध

किसी ने कुछ साल पहले एक अनुभव साझा किया कि उनके यहाँ एक बेहद बुजुर्ग महिला, एक रोज अचानक गली में चारपाई डालकर रहने लगीं। इसके पीछे का कारण यह था कि उनके बेटे-बहुओं और बेटियों ने उनकी जिम्मेदारी लेने से साफ इंकार कर दिया था। यह अपने आप में दिल दहला देने वाला मामला था। गली में इस बात की बहुत चर्चा हुई कि वे क्यों बाहर पड़ी हैं? पर किसी ने भी उन्हें अपने घर में पनाह नहीं दी। बरसातों में उनकी स्थिति और दयनीय हो जाती थी। खाने-पीने का इंतजाम किसी तरह से हो जाता था या लोग उनको खाना दे आते थे। एक रोज भयानक सर्दी में वे सोई तो सुबह उठीं नहीं। उनकी मौत सर्दी लगने से हो गई थी। अनुभव बताने वाले व्यक्ति ने अंत में कहा- ''उस बुजुर्ग औरत की मृत्यु का मेरे बालमन पर गहरा प्रभाव पड़ा। मैं उस हृदयविदारक घटना को भूल ही नहीं पाती हूँ।''

यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि पुराने वक्त की कथाओं में व्यक्ति अपने जीवन के अंतिम चरण में जंगल की ओर चला जाता था। इसलिए भारत में जंगलों का अपना एक महत्व है। जंगल इंसानी जीवन लीला का अहम हिस्सा थे। जंगल वह जगह नहीं थी, जहाँ भंयकर पशु और जीव रहते हैं बल्कि वह जगह थी जो व्यक्ति को उसके अंतिम दिनों में बिना लिंग और जाति देखे पनाह देती थी। जंगल उसे जीवन से मुक्त करने की व्यवस्था देता था। लेकिन आज का समय तो ग्लोबल गाँव का है। वैश्वीकरण ने जंगलों को खत्म कर दिया है। गहराई से हमारी पारिवारिक व्यवस्था को प्रभावित किया है। हमने जंगलों को मुक्तिधाम की जगह विकास के महत्वपूर्ण साधन में बदल दिया है। अब हम बच्चों को यह बताते हैं कि पेड़ से क्या-क्या फायदे हैं, न कि पेड़ कैसे हमारे जीवन से जुड़े हैं। यह परिवर्तन बेहद बारीक है।

रिश्तों के फ्रेम में हमने कुछ बेहतर जीवन के चित्र खींचे हैं। बहुत कुछ पाने और जीने की तमन्ना में हमें वे सब चाहिए जिसकी पहले जरूरत नहीं होती थी। आदर्श परिवार के चित्र से अब बुजुर्ग लोगों के व्यक्तित्व कट चुके हैं या धीरे-धीरे काटे जा रहे हैं। हमने व्यक्ति को अब एक बोझ में तब्दील कर लिया है। देखभाल की जिम्मेदारी से मुक्ति की चाह में, संबंधों के व्यवहार में भयानक परिवर्तन हुआ है। पूंजीवाद के दिए हुए सपनों को हमने हाथों हाथ खरीदा है। उनमें रुपया, घर, गाड़ी, खुशहाली, तीज-त्यौहार से लेकर हर छोटी बड़ी चीज शामिल है। बस नहीं है कोई तो वे हमारे बुजुर्ग हैं, जो पूंजीवादी व्यवस्था में काम की कुंजी नहीं हैं। कुछ वर्षो तक बच्चों के लिए टेलीविजन पर प्रसारित होने वाले कार्टून कार्यक्रमों में बुजुर्ग छवियाँ अहम होती थीं। परन्तु हाल के वर्षो में इसमें कमी आई है। यह महीन बदलाव लोगों की नजर में नहीं है।

अनुभव और देखभाल

कोई भी व्यक्ति वृद्धावस्था में छलांग लगाकर नहीं पहुँचता। जिंदगी के सफर में वह धीरे-धीरे बहुत से तजुर्बों को लेते हुए बढ़ता है। हमारी सामाजिक व्यवस्था में अनुभव को सम्मान की नजर से देखने के बर्ताव में कमी आई है। इसकी जगह मतलब परस्ती ने ले ली है। शहरी इलाकों में यदि पति-पत्नी दोनों कामकाजी हैं तो उनके लिए घर के बुजुर्ग 'केयरटेकर' की भूमिका में रहते हैं। ढेरों जिम्मेदारी उनके कन्धों पर रखी जाती हैं। लेकिन इसके बदले में उनको दिया जाने वाला पोषण न के बराबर होता है। इसके अलावा विदेशों में नए जीवन और करियर की चाह में गए युवा अपने पीछे बुजुर्ग माता-पिता को नौकरों के सहारे छोड़ कर वहीं बस जाते हैं। इसके बाद इस तरह पीछे छूटे हुए लोग अपराध का शिकार भी जल्दी हो जाते हैं। अपराध से पहले वे अकेलेपन का शिकार होते हैं। अक्सर स्वस्थ समाज की कल्पना में लोग अपने विचारों में रोजगार, सुरक्षा, स्वास्थ्य आदि बुनियादी चीजों पर बहस करते हैं, पर कभी सुबह और शाम पार्कों में वक्त काटते हुए इंसानी समुदाय के बारे में नहीं सोचते जिनको तमाम तरह की परेशानियाँ घेरे रखती हैं। सवाल यही बनता है कि अपने बुजुर्ग लोगों को छोड़कर स्वस्थ समाज कैसे और किसके लिए तैयार किया जाएगा?

फलसफा

जीवन हर चीज पाने की दौड़ के अलावा भी बहुत कुछ है। हम चीजों में जीवन की सुख-सुविधा की खोज कर रहे हैं। वर्तमान समय में भागते-दौड़ते हुए समाज में यह वाजिब भी है। लेकिन कोरोना महामारी ने जिस तरह से हर उम्र के लोगों को घर में रहने पर मजबूर कर दिया है उसके कुछ नतीजे तो निकल ही रहे हैं। इस महामारी ने वक्त को धीमा कर दिया है। उसने नौजवान और सदा व्यस्त रहने वाले इंसानी समुदाय को कुछ बातें समझाने की कोशिश की है। जीवन चीजों के सहारे ही नहीं बीत सकता। उसके लिए अपने लोगों का साथ जरूरी है। 'थोड़ा है, थोड़े की जरूरत' वाले फलसफे के साथ व्यक्ति अपने रिश्तों के साथ गरिमामय जीवन जी सकता है। एक कहानी के मुताबिक किसी व्यक्ति को खुदा के दर्शन करने की धुन सवार थी। उसकी खातिर उसने पड़ाव में आने वाली हर चीज को नजरन्दाज किया और कायातोड़ मेहनत की कि खुदा के दर्शन कर के ही कुछ करूँगा। खुदा हाजिर हुए पर वह व्यक्ति रास्ते में इतना थक गया कि उसके दर्शन से पहले ही बेहोश होकर गिर पड़ा। हमें इस कहानी से यही समझने की जरूरत है कि हम प्रक्रिया में कहीं अपने लोगों को तो नहीं छोड़ते जा रहे। हमें धैर्य का परिधान पहनना ही होगा। कानों को सुनने की आदत डालनी होगी। न जाने कितनी कहानियाँ और अनुभव हमारे बुजुर्ग होते माता-पिता और अन्य संबंधियों के पास पड़ी हैं, जो अभी तक अनसुनी रह गई हैं।

****